P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

सहजोबाई कृत 'सहजप्रकाश' पुस्तक की समीक्षा

सारांश

भारतीय अध्यात्म के इतिहास में सहजोबाई का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। सहजोबाई का सम्बन्ध दिल्ली के 'ढूसर' जाति के परिवार से था। उनका जन्म सन 1750 ई. के लगभग माना जाता है। सहजोबाई निर्गुण मत के चरणदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक चरणदास जी की शिष्या थी। सहजोबाई ने गुरुस्तुति के उद्देश्य से दिल्ली में 'सहजप्रकाश' पुस्तक की रचना की। इसमें सत्संग का निर्णय, सद्‌गुरु महिमा, साधु–असाधु की वाणी, साधु महिमा अंग, वैराग्य उपजावन नाम का अंग, लघुताई प्रशंसा, प्रेम, अजपा स्मरण, तिथि वार वर्णन इत्यादि अनेक शब्द राग रागनियों में सहजोबाई कृत वर्णित हैं। सहजोबाई ने अपने सम्प्रदाय के अनुसार ईश्वर से ज्यादा गुरु को महत्व दिया है । सहजोबाई कृत 'सहजप्रकाश' के अंतर्गत गुरु महिमा के अतिरिक्त निर्गुण मत के अन्य सिद्धांतों का भी प्रतिपादन हुआ है। पूर्ववर्ती निर्गुण कवियों के काव्य के सापेक्ष 'सहजप्रकाश' में यह नवीनता है कि सहजोबाई अपनी बात को समाज में पहुँचाने के लिए केवल निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना ही नहीं करती है। जनसामान्य में ब्रह्म के सगुण रूप को अधिक स्वीकार किया जाता है। इस दृष्टि से समाज में अपना संदेश प्रेषित करने के लिए सहजोबाई ने निर्गुण के साथ–साथ सगुण ब्रह्म का भी उल्लेख किया है। स्त्री–भक्त काव्य लेखन में सहजोबाई का श्रेष्ठ स्थान है और सहजोबाई कृत 'सहजप्रकाश' भी भक्ति काव्य की परम्परा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

मुख्य शब्द : सहजोबाई, सहज प्रकाश, संत, निर्गुण भक्ति, गुरु महिमा।

कपिल कुमार गौतम
शोध छात्र,
हिन्दी विभाग,
डॉ. हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय,
सागर, मध्य प्रदेश, भारत

प्रस्तावना

भारतीय अध्यात्म के इतिहास में सहजोबाई का नाम बड़े ही आदर के साथ लिया जाता है। सहजोबाई का सम्बन्ध दिल्ली के 'ढूसर' जाति के परिवार से था। उनका जन्म सन 1750 ई. के लगभग माना जाता है। सहजोबाई निर्गुण मत के चरणदासी सम्प्रदाय के प्रवर्तक चरणदास जी की शिष्या थी। चरणदासी सम्प्रदाय की प्रमुख गद्दी दिल्ली में जामामस्जिद के पास स्थित है। 'सहजप्रकाश' के अंतर्गत सहजोबाई ने अपना परिचय देते हुए लिखा है कि उनके पिता का नाम हरिप्रसाद, जाति 'ढूसर' और गुरु का नाम चरणदास था–

हरि प्रसाद की सुता, नाम सहजो है बाई।
दूसर कुल में जन्म, सदा गुरु चरण सहाई।।
चरणदास गुरुदेव, भेव मोहिं अगम बतायो।
योग युक्ति सूं दुर्लभ, सुलभ करि दीप दिखायो।।[1]

गुरु चरणदास की शरण में आकार सहजोबाई ने योग के माध्यम से अपने जीवन के अंधकार को समाप्त किया। चरणदासी सम्प्रदाय में योग का विशेष महत्व है। संप्रदाय के प्रवर्तक गुरु चरणदास जी ने भी 'अष्टांग योगमार्ग' शीर्षक से योग केन्द्रित एक पुस्तक की रचना की है। 'सहजप्रकाश' के रचना काल, स्थान और रचना के प्रयोजन के संदर्भ में सहजोबाई ने लिखा है–

फागुन महिना अष्टमी, शुक्लपक्ष बुद्धवार।
संवत अट्ठारै सै हुता, सहजो किया विचार।।
गुरुस्तुति के करन को, बाढो अधिक हुल्लास।
होते होते हो गयी पोथी सहज प्रकाश।।
दिल्ली शहर सुहावना, परीक्षितपुर में वास।
तहां समापति ही भई, नवका सहजप्रकाश।।[2]

स्पष्ट है कि 'सहजप्रकाश' की रचना संवत 1800 के फाल्गुन माह में शुक्ल पक्ष की अष्टमी में बुधवार के दिन हुई थी। सहजोबाई ने गुरुस्तुति के उद्देश्य से दिल्ली में सहज प्रकाश की रचना की। उक्त पंक्तियों के मध्यम से निश्चित तौर पर यह स्पष्ट है कि सहजोबाई का लेखन काल संवत 1800 के लगभग और निवास स्थान दिल्ली था। सहजोबाई की हस्तलिखित रचनाओं की प्रतियों का सर्वप्रथम उल्लेख नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, की खोज–रिपोर्ट में मिलता है।

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

सहजोबाई की अलग–अलग प्राप्त रचनाओं को संकलित करके सर्वप्रथम 'वेलवेडियर प्रेस' प्रयाग ने संतवानी पुस्तक माला के अंतर्गत 'सहजप्रकाश' शीर्षक से प्रकाशित किया। खेमराज श्रीकृष्णदास प्रेस मुम्बई से सन 1922 ई. में प्रकाशित 'सहजप्रकाश' के संपादक पं. शिवनारायण शर्मा ने पुस्तक के समर्पण में लिखा है–''यह 'सहजप्रकाश' नामक पुस्तक लिखी हुई पुरानी छिन्न–भिन्न एक पुरुष के पास थी, परन्तु उसको इसका आशय कुछ ज्ञात नहीं था कि इसमें क्या–क्या गुण हैं। मैंने इसे गूदड़ का लाल समझ कर उससे प्रार्थना करके एक पक्ष के लिए मांग लिया अब उसको लोकोपकारार्थ श्रीसेठ खेमराज श्री कृष्णदास जी को समर्पण कर और प्रार्थना कर मुद्रित कराता हूँ– आशा है कि सर्व महाशय मेरी इस अल्पज्ञता की धृष्टता के अपराध को क्षमा कर इस पुस्तक से लाभ उठावेंगे।''[3]सहजोबाई कृत हस्तलिखित विभिन्न रचनाओं को 'सहजप्रकाश' के अंतर्गत पृथक–पृथक खण्ड के रूप में रखा गया है। अलग–अलग भागों के रूप में विभाजित रचनाओं के संदर्भ में सम्पादित पुस्तक की भूमिका में संपादक पं. शिवनारायण शर्मा ने लिखा है–''इसमें सत्संग का निर्णय, सद्गुरु महिमा, साधु–असाधु की वाणी, साधु महिमा अंग, वैराग्य उपजावन नाम का अंग, लघुताई प्रशंसा, प्रेम, अजपा स्मरण, तिथि वार वर्णन, इत्यादि अनेक शब्द राग रागनियों में सहजोबाई कृत वर्णित हैं। जिनके पठन–पाठन से अज्ञान रुपी तिमिर नाश होकर ज्ञान का प्रकाश होता है।''[4] सहजोबाई का सम्बन्ध निर्गुण पंथ के चरणदासी सम्प्रदाय से था। डॉ. राजकिशोर पाण्डेय के अनुसार ''चरणदासी सम्प्रदाय का मुख्य उद्देश्य लोगों में त्याग, करुणा और विश्वबंधुत्व का भाव उत्पन्न करना है। सम्प्रदाय में गुरु को बहुत महत्व दिया जाता है। सम्प्रदाय का विश्वास है कि जो दीक्षित नहीं है, उसका धर्म–कर्म सबकुछ व्यर्थ है।''[5]सहजोबाई ने भी अपने सम्प्रदाय के अनुसार ईश्वर से ज्यादा गुरु को महत्व दिया है। 'सहजप्रकाश' के प्रथम खण्ड 'अथ सद्गुरु महिमा वर्णन' के अंतर्गत सहजोबाई ने दोहा और चौपाई छंद में साधना के मार्ग में गुरु महिमा का वर्णन किया है। गुरु महिमा और गुरु वंदन की परम्परा भारत में प्राचीन काल से रही है। स्कन्दपुराण के गुरुगीता में वर्णित वेदव्यास द्वारा रचित श्लोक ''गुरुर्ब्रह्मा ग्रुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः, गुरुः साक्षात् परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः'' प्राचीन काल से लेकर वर्तमान समय में भी पूर्ण रूप से लोक में प्रचलित एवं प्रासंगिक है। हिन्दी साहित्य में गुरु वंदन की जो परम्परा आदिकाल से चली आ रही है, सहजोबाई ने उसको अविरल रूप में आगे बढ़ाने का काम किया है। आराध्य की भक्ति के निर्गुण अथवा सगुण दोनों ही स्वरूपों में गुरु का विशेष महत्व है। गुरु की कृपा और उसके मार्गदर्शन के माध्यम से ही भक्त अपने आराध्य तक पहुँच पाता है। इस रूप में गुरु को सर्वश्रेष्ठ मानते हुए सहजोबाई ईश्वर से पूर्व गुरु को नमन करती है। सहजोबाई की गुरु भक्ति की विशेषता यह है कि वह अपने गुरु को वंदन करने से पहले गुरु के भी गुरु दादा सुखदेव जी को प्रणाम करती है। दादा गुरु सुखदेव की स्तुति के साथ की 'सहजप्रकाश' का प्रारंभ होता है–

कर जोरूं परणाम करि, धरुं चरण पर शीश।
दादा गुरु सुखदेव जी, पूरण विश्वेवीस।।
परमहंस तारन तरन, गुरु देवन गुरु देव।
अनभै वाणी दीजिये, सहजो पावै भेव।।[6]

दादा गुरु सुखदेव का महिमागान करने के उपरांत सहजोबाई ने अपने गुरु चरणदास की महिमा वर्णन और प्रशस्ति का गुणगान किया है। गुरु निर्मल आनंद प्रदान करके अपने शिष्य को ब्रह्म स्वरूप बना देते है और जीवन की सभी आपदाओं को, व्यथाओं को हर लेते हैं। सहजोबाई ने गुरु के विषय में गुण–शील के विवेचन करने के उपरांत गुरु को चार श्रेणियों में विभक्त किया है–

गुरु हैं चारि प्रकार के, अपने अपने अंग।
गुरु पारस दीपक गुरु, मलय गिरि गुरु भृंग।।[7]

गुरु पारस के सामान है जो शिष्य की लोह स्वरूपी भावनाओं और संवेदनाओं को कंचन के सामान सुंदर, स्वच्छ और मनोहर बना देता है। गुरु अपने ज्योति विहीन शिष्य को दीपक की भांति समस्त ज्योति प्रदान कर उसके हृदय में ज्ञान का आलोक प्रसारित करता है। मलयगिरि के समान अपने सौरभ से शिष्य रुपी पलाश को भी चंदन के समान सुरभित कर देता है। गुरु के समक्ष शिष्य का अस्तित्व कीट के समान होता है, किन्तु गुरु उन्हें ज्ञान देकर अपने समकक्ष बना लेता है। हिन्दी के आदि कवि सरहपा ने माना है कि गुरु के बिना ज्ञान प्राप्त करना संभव नहीं है, उन्होंने दोहाकोश में लिखा है–''गुरु की जै गहिला, गुरु बिन ज्ञान न पाइला रे भाइला'', गुरु की भूमिका को स्वीकार करते हुए गुरु नामदेव कहते हैं–''बिनु गुरु होई न ज्ञान।''[8]कबीर तो गुरु के विकल्प के रूप में ईश्वर को भी स्वीकार नहीं करते हैं, वे कहते हैं–''हरि रूठे को ठौर है, गुरु रूठे को नाही ठौर'', ठीक उसी प्रकार सहजोबाई भी निस्संकोच भाव से कहती है कि ईश्वर की कृपा हो चाहे ना हो, उससे कोई फर्क नहीं पड़ता, किन्तु गुरु कृपा के बिना बुद्धिमान व्यक्ति भी इस संसार में कुछ नहीं कर सकता है–

हरि किरपा जो होई तो, नाहीं होई तो नाहिं।
पै गुरु किरपा दया बिनु, सकल बुद्धि बहि जांहि।।[9]

इन्सान की बुद्धि और ज्ञान के विषय में सहजोबाई यह भी स्पष्ट करती हैं कि भले ही इन्सान में बुद्धि किसी भी कोटि अथवा स्तर की हो किन्तु वह गुरु कृपा के अभाव में कुछ नहीं कर सकता है। ईश्वर ने चार प्रकार की बुद्धि का प्रसार मनुष्य में किया है। प्रथम बुद्धि के मनुष्य जल पर खिंची गयी उस रेखा के समान है जो आगे खींचती जाती है और पीछे से मिटती जाती है। दूसरी बुद्धि लोक के द्वारा नित्य प्रयोग में आने वाले मार्ग पर खिंची गयी रेखा के समान होती है, जो समाज के चलने के साथ की समाप्त होती जाती है। तीसरी बुद्धि पत्थर पर खिंची गयी लकीर के सामान होती है जो समय के साथ घट अवश्य सकती है किन्तु कभी बढ़ नहीं सकती। चौथी बुद्धि जल में तैरती तेल की उस बूंद के समान है जो लगातार फैलते हुए जल के पुरे पृष्ठ पर अपना विस्तार कर लेती है। इन चार प्रकार की बुद्धियों में प्रथम तीन प्रकार की बुद्धि सहज ही मिल सकती है किन्तु चौथे प्रकार की बुद्धि किसी विरले को ही प्राप्त होती है। जिस प्रकार

P: ISSN NO.: 2321-290X RNI : UPBIL/2013/55327 VOL-6* ISSUE-8* (Part-1) April- 2019
E: ISSN NO.: 2349-980X **Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika**

रामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास कहते हैं—''जिन्ह कें रही भावना जैसी, प्रभु मूरति तिन्ह देखि तैसी ।''[10] जिसके ह्रदय में जैसी भावनाओं का विस्तार होता है, वह प्रभु की वैसी ही मूर्ति का साक्षात्कार करता है। उसी के अनुरूप सहजोबाई भी कहती हैं, ''जैसी जाकी बुद्धि है, सोई बतावे ध्यान।''[11]

सहजोबाई के लिए उसके गुरु ही उसके ईश्वर हैं। सहजोबाई की कविता के सन्दर्भ में ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल' ने लिखा है—''वह कोरी कविता ही नहीं है किन्तु प्रेम रसमयी सुधा—धार है। इनकी वाणी से सबसे बड़ी बात यह प्रगट होती है कि यह गुरु को भगवान से भी ऊँचा मानती थीं। इनका यह सिद्धांत था कि बिना सतगुरु की कृपा से जीव किसी प्रकार से संसार से मुक्ति नहीं पा सकता।''[12]वास्तव में सहजोबाई को अपने गरु के लिए ईश्वर को भी त्यागने से भी कोई गुरेज नहीं है। सहजोबाई ने गुरु महिमा का वर्णन निर्गुण मत में स्थापित गुरु की परिभाषा के अनुरूप ही किया है। जिस प्रकार कबीर कहते हैं—''गुरु गोविन्द दोऊ खड़े, काके लागूं पाय। बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय।'' निर्गुण संत, गुरु की महत्ता के समक्ष परमेश्वर को उपेक्षित कर देते हैं। चूँकि स्पष्ट है कि गुरु के अस्तित्व पर ही ईश्वर का आभास निर्भर करता है, इस तथ्य की पुष्टि करते हुए सहजोबाई बड़ी दृढ़ता के साथ कहती है—

परमेश्वर सूं गुरु बड़े, गावत वेद पुरान।
सहजो हरि के मुक्ति हैं, गुरु के घर भगवान।।[13]

गुरु का स्थान ईश्वर से भी बड़ा स्वीकार करने के उपरांत गुरु का विस्तार लौकिक जगत से अलौकिक जगत तक हो जाना स्वभाविक है। जीवन का प्रत्येक संभव—असंभव कार्य गुरु की कृपा होने पर यथा शीघ्र संपन्न हो जाता है। नामदेव जी भी कहते हैं—

सुफुल जन्म मोको गुरु किना ।
दुःख बिसार सुख अंतर कीना।।
ज्ञानदान मोको गुरु दीना ।
राम नाम बिन जीवन हीना।।[14]

गुरु का प्रताप लोक से परे अलौकिक स्तर तक मनुष्य की सहायता करता है। दादू दयाल ने भी कहा है—

दादू काढे काल मुख, श्रवण हु शब्द सुनाय।
दादू ऐसा गुरु मिल्या, मृतक लिये जिवाय।[15]

उसी प्रकार सहजोबाई अपने गुरु की आलौकिक क्षमता का उल्लेख करती है। गुरु में वह क्षमता है जो असंभव को भी संभव कर सकता है। गुरु के अलौकिक स्वरूप का उल्लेख करते हुए सहजोबाई ने लिखा है कि गुरु के प्रताप से समुन्द्र जैसी बाधा भी पार हो जाती है। वेद का अर्थ मुखबधिर व्यक्ति भी गुरु के एक आदेश पर कहने लगता है—

सहजो गुरु परताप सूं, होय समुद्दर पार।
वेद अर्थ गूंगा कहै, वाणी किति एक वार।।[16]

सहजोबाई की गुरु भक्ति का स्वरूप निर्गुण संत परम्परा से ही प्राणित हुआ है। गुरु के सानिध्य में आकर ही मनुष्य को निर्वाण अथवा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। गुरु के माध्यम से ही मनुष्य के सभी विकार और दोष समाप्त होते हैं। कबीर ने भी कहा है—''गुरु बिन ज्ञान न उपजै, गुरु बिन मिलै ना मोष।'' उसी परम्परा का निर्वहन करते हुए सहजोबाई ने लिखा है—

चरणदास के चरण पर, सहजो वारे प्रान।
जगत व्याधि सों काढि कर, राखी पद निर्वान।।[17]

सहजोबाई ने सर्वाधिक पद गुरु की महिमा और गुरु स्तुति में ही लिखे हैं। सहजोबाई इस भौतिक भाव जगत में स्वयं को नष्ट कर लेती अगर उसे सतगुरु चरणदास का सानिध्य न प्राप्त हुआ होता। वो कहती हैं, गुरु की कृपा के बिना अट्ठारह पुराण पढकर अर्थ करने से भी कुछ प्राप्त नहीं हो सकता है। क्योंकि जब तक गुरु की कृपा नहीं होगी तब तक इस जगत रुपी भवसागर का भेद पाना असंभव है, बिना गुरु ज्ञान के पांडित्य भी व्यर्थ ही होगा। गुरु कृपा के माध्यम से ही भवसागर के इस संसार से सहजोबाई को मुक्ति प्राप्त हुई है। सहजोबाई ने गुरु की विशेषताओं और उसके गुणों को कई दोहों और छंदों में व्यक्त किया है। उन्होंने गुरु को परिमार्जक की भांति माना है। गुरू अपने आशीर्वाद से शिष्य के सभी विकारों, अवगुणों और अशुद्धियों को दूर करता है। गुरु को धोबी की संज्ञा देकर उन्होंने कहा है कि जिस प्रकार धोबी कपड़े को मल—मल के धोकर उसकी अच्छे से सफाई करता है, ठीक उसी प्रकार गुरु अपने शिष्य को ज्ञान देकर सभी अशुद्धियों को निकाल कर शिष्य को विशुद्ध बना देता है—

सहजो गुरु ऐसा मिलै, जैसे धोबी होय।
दै दै साबुन ज्ञान का, मलमल डारै धोय।।[18]

सहजोबाई जहाँ गुरु की महिमा का गुणगान करती है, वहीं विशुद्ध शिष्यत्व को प्राप्त करने के लिए शिष्य हेतु कुछ गुणों को भी दर्शाती है। गुरु कृपा हेतु शिष्य के लिए भी अनिवार्यता अथवा योग्यता का उल्लेख करती है। शिष्य के लिए आवश्यक है कि वह स्वयं को गुरु के हाथों में इस प्रकार सौंप दे, जिस प्रकार मिट्टी स्वयं को कुम्हार के हाथों में सौंप देती है। मिट्टी के समर्पण के उपरांत कुम्हार उसे एक सुंदर आकार प्रदान करता है। ऐसे सतगुरु की महानता में अपने अस्तित्व को पूर्णतया सौंपकर ही शिष्य ज्ञान की प्राप्ति कर सकता है—

सहजो सिख ऐसा भला, जैसे माटी मोय।
आपा सौंपि कुम्हार कूं, जो कछु होय सो होय।।[19]

सहजोबाई की गुरु भक्ति में जब ईश्वर का अस्तित्व भी गुरु के ऊपर निर्भर करता है और ईश्वर गुरु के समक्ष उपेक्षित हो जाता है। तब 'ओशो' सहजोबाई के विषय में लिखते हैं—''सहजो के वचन बड़े ही नास्तिक मालूम पड़ते हैं, 'राम तंजू पर गुरु न विसारु' छोड़ सकती हूँ परमात्मा को पर गुरु को नहीं छोड़ सकती हूँ। मुझे कोई अड़चन नहीं है राम को त्यागने में लेकिन गुरु को त्यागना असंभव है।''[20] ओशो ने भले ही सहजोबाई को नास्तिक प्रवृत्ति का चिन्हित किया हो लेकिन वास्तव में सहजोबाई के काव्य सगुण और निर्गुण दोनों ही धाराओं में प्रवाहित होता है। सहजोबाई निर्गुण सम्प्रदाय में दीक्षित थी। इसलिए उनके काव्य में निर्गुण ब्रह्म को प्रमुखता मिलती है। लेकिन निर्गुण—सगुण का द्वंद्व आदिकाल से ही हिन्दी साहित्य में देखने को मिलता है। तुलसीदास जी ने भी ब्रह्म के सगुण और निर्गुण दोनों स्वरूपों को स्वीकार किया है—''अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध

अनादि अनूप।।''[21] तुलसीदास जी तो दोनों में भेद भी नहीं मानते है, वो कहते हैं–''सगुनहिं अगुनहिं नहिं कछु भेदा।''[22]निर्गुण काव्यधारा के प्रतिनिधि कवि कबीर अपनी रचना 'सबद' के अंतर्गत भले ही कहते हो–''निरगुन ब्रह्म कथौ रे भाई'', किन्तु उन्होंने सगुण का अस्तित्व भी स्वीकार करते हुए 'रमैनी' के अंतर्गत कहा है–''हम निरगुन तुम सरगुन जानां।'' कबीर 'सबद' के अंतर्गत यह भी स्वीकार करते हैं कि उन्होने सगुण ब्रह्म की अवधारणा पर भी विचार किया है–''दखिन कूट जब सुनहाँ झूका, तब हम सगुन बिचारा।'' इसी परम्परा को ग्रहण करते हुए सहजोबाई ने भी सगुण–निर्गुण दोनों के अभेद का प्रतिपादन किया है।

निर्गुण सर्गुण एक प्रभु, देखा समझे विचार।
सतगुरु ने आज्ञा दई, निह चौ किया निहार।।[23]

सहजोबाई मानती हैं कि ब्रह्म के निर्गुण और सगुण दो रूप हैं किन्तु आदि से अंत तक दोनों एक ही हैं–''निर्गुण सगुण रूपौ देई। आदि अंत मधि एक ही होई।।''[24] सहजोबाई की रचनाओं में सगुण भक्ति के प्रति पूर्ववर्ती निर्गुण संतों के जैसा व्यवहार नहीं है। पूर्ववर्ती निर्गुण संत यथा कबीर, दादू जैसे कवियों की रचनाओं में सगुण के अस्तित्व को स्वीकार अवश्य किया गया है किन्तु उन्होंने उसको आत्मसात नहीं किया है। कबीर की वक्रोक्तियाँ, व्यंग्य और उपहास से सहजोबाई के विचार सर्वथा पृथक हैं। सहजोबाई निर्गुण का आग्रह करती है किन्तु सगुण को अवसर के अनुरूप स्वीकार भी करती है। वास्तव में चरणदासी सम्प्रदाय ज्ञान और योग के मार्ग का उपदेश तो प्रदान करता है किन्तु चरणदास जी के आध्यात्म का आधार भागवत गीता और पुराण आदि हैं। चरणदासी सम्प्रदाय के अनुसार ''सम्प्रदाय के सिद्धांतो के आदि प्रतिपादक नारायण हैं, उन्होंने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने वेदव्यास को, वेदव्यास ने शुकदेव को और शुकदेव ने चरणदास को सम्प्रदाय के सिद्धांतों का उपदेश दिया।''[25]यही कारण है कि चरणदासी निर्गुण सम्प्रदाय होते हुए भी कृष्ण को भागवत के नायक के रूप में सम्पूर्ण सांसारिक क्षेत्र में प्रेरक के रूप में स्वीकार करते हैं। सहजोबाई कृष्ण के प्रेम को सूफी अंदाज में ग्रहण करके सगुण को भी निर्गुण के रूप में प्रस्तुत करती है। सहजोबाई पर गुरु चरणदास का पूर्ण प्रभाव देखने को मिलता है। इसीलिए सहजोबाई भी गीता की विवेचना करती हैं–

गीता में कृष्ण ने, वचन कहे सब खोल।
सब जीवन में मैं बसूं, कै चर कहा अडोल।।
धन्य जशोदा नंद धन, धन ब्रजमंडल देश।
आदि निरंजन सहजिया, नयो ग्वाल के भेस।।[26]

वास्तव में सहजोबाई ने निर्गुण–सगुण संशय निवारण के संदर्भ में जो रचनाएँ लिखीं हैं, उसमें श्रीमद्‌भगवद्‌गीता का प्रभाव लक्षित होता है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अंतर्गत भक्तियोग नामक 12वें अध्याय में श्लोक संख्या 01 से 12 तक साकार और निराकार के उपासकों की उत्तमता का निर्णय और भगवत प्राप्ति के उपाय का विषय वर्णित है।

निर्गुण मत की साधना में सत्संग, वैराग्य और आध्यात्मिक वातावरण का प्रमुख स्थान है। सांसारिक जीवन के उहापोह, नैराश्य, लाभ–लोभ, तृष्णा इत्यादि की प्रतिक्रिया से उत्पन्न आध्यात्मिकता के विकास हेतु अनुकूल वातावरण, आचरण और व्यवहार की आवश्यकता होती है। निर्गुण भक्ति के अंतर्गत साधक के आचरण का विशेष महत्व है। दादू दयाल भी हरि की भक्ति के लिए साधु की संगति को महत्व देते हुए कहते हैं–

साधु मिले तब उपजे, हिरदे हरि का हेत।
दादू संगति साधु की, कृपा करत तब देत।।[27]

सहजोबाई आध्यात्मिक परिवेश के प्रभाव को अग्रलिखित पंक्तियों में व्यक्त करती है–

साधु संग में चंदना, सकल अँधेरा और।
सहजो दुर्लभ पाइयो, संत संगति में ठौर।।[28]

साधु–संत की संगति के साथ–साथ उसके गुण–अवगुणों की पहचान करना भी आवश्यक है। साधु के आचरण के लिए विशेष रूप से उसकी दिनचर्या और भाषा–बोली पर नियंत्रण होना बहुत जरुरी है। भारतीय आध्यात्म में प्राचीन काल से ही साधु–संतों की जीवन शैली को विशेष नियमों के माध्यम से निर्धारित किया जाता रहा है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता के अंतर्गत योगी महात्मा पुरुषों के आचरण और उनकी महिमा का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार से बौद्ध और जैन धर्म में भी साधु–संतों के लिए विनय के नियमों का उल्लेख मिलता है। जिनके माध्यम से साधारण मनुष्य भी साधु के आचरण को आत्मसात करके आध्यात्मिक परिवेश का निर्माण कर सकते हैं। इसलिए निर्गुण परम्परा में साधु और असाधु के लक्षणों का निर्धारण किया गया है। साधु वह है जिसका अपने शरीर पर पूर्ण नियंत्रण हैं, जो आलस और निद्रा के भाव से मुक्त है और ज्ञान सम्बन्धी वाद–विवाद में आगे बढ़ कर हिस्सा लेता है। जिसका अपने मन पर नियंत्रण होता है, जो अपनी पाँचों इन्द्रियों पर संयम रखता है। जिसका मस्तिष्क संतुलित और स्वभाव विनय संपन्न है, जो सांसारिक ईच्छाओं के मोह में न फंस सके। इसी प्रकार के गुणों का उल्लेख करती हुई सहजोबाई कहती है–

साधु सोई जो काया साधे।
तजि आलस अरु वाद विवादे।।
गहे धारणा सबगति भारी।
तजै विकलता अस्तुति गारी।।
क्षमावंत धीरज को धारे।
पाँचों वश करि मन को मारै।।
त्यागे झूठ सांच मुख बोले।
चित्त स्थिर इत्त उत नाहिं डोले।।[29]

माना जाता है कि शब्द ब्रह्म होते है। मनुष्य की पहचान उसके शब्दों और उसकी वाणी से ही होती है। ज्ञान का आंकलन भी वाणी से किया जा सकता है। मनुष्य की बोली को उसके ज्ञान का आधार मानते हुए कवि सुंदरदास कहते हैं– ''बोलिए तौ तब जब बोलिये की बुद्धि होय। ना तो मुख मौन गहि चुप होए रहिए।'' सहजोबाई ने साधु–असाधु के लक्षणों को दर्शाने के उपरांत उनकी बोलियों का भी निर्धारण किया है । सहजोबाई ने साधु और असाधु की 12–12 प्रकार की बोलियों का उल्लेख किया है।

'सहजप्रकाश' में संग्रहित 'अथ विराग उपजावन का अंग वर्णन' खण्ड के अंतर्गत सहजोबाई ने वैराग्य को

सत्य और जगत को मिथ्या बताया है। आदिगुरू शंकराचार्य ने 'ब्रह्म सत्य जगत मिथ्या' की अवधारणा देकर मनुष्य में वैराग्य, सत्संग, संन्यास के प्रति जुड़ाव और भौतिक जगत के प्रति उपेक्षा के भाव का विस्तार किया। सहजोबाई पर अद्वैत मत का प्रभाव भी देखने को मिलता है। सहजोबाई कहती हैं कि अज्ञानी मनुष्य सांसारिक माया के स्वप्न को सत्य मान कर कार्य करता है और नश्वर जगत के मोह जाल में फंस कर रह जाता है। जबकि ज्ञानी मनुष्य संसार के आनंद और शोक से परे स्वयं में मस्त रहता है। सहजोबाई ने मनुष्य का जगत से झूठा सम्बन्ध बताया है–

झूठा नाता जगत का, झूठा है घरवास।
यह तनु झूठा देखि कर, सहजो भई उदास।।[30]

सहजोबाई ने मनुष्य की क्षणभंगुरता को स्वीकार किया है। निर्गुण भक्ति काव्य में संसार की नश्वरता और जीवन की क्षणभंगुरता के प्रति जागृत करने का भाव विद्यमान रहता है। सहजोबाई के काव्य में भी जीवन और मरण के चक्र से मुक्ति पाने के लिए वैराग्य का मार्ग बताया गया है। चौरासी लाख योनियों और मनुष्य जीवन के विभिन्न कष्टों और आपदाओं को झेलने के उपरांत जीव में नैराश्य का भाव उत्पन्न हो जाता है। उस पीड़ा और यातना के निवारण हेतु सहजोबाई ने वैराग्य भक्ति का मार्ग चुनने का आग्रह किया है–

चौरासी योनी भुगति, पायो मनुष्य शरीर।
सहजो चुके भक्ति बिन, फिर चौरासी पीर।।[31]

सहजोबाई के काव्य पर सिद्धों–नाथों के हठयोग साधना का भी प्रभाव देखने को मिलता है। आसन, संयम, प्राण वायु, योग मुद्रा, नाद, बिंदु, समाधि इत्यादि शब्दों के प्रयोग के साथ ही सहजोबाई योग साधना पर भी बल देती है–

आसन संयम साधकर, साधै प्राण अपान।
सहजो मुद्रा जो सधें, तो योगी परमान।।
तीनों बंध लगाई के, अनहद सुनै टंकोर।
सहजो शुन्न समाधि में, नहीं साँझ नहिं भौर।।[32]

सहजोबाई कहती है कि इस संसार में सभी दुखी हैं। आशावादी, ज्ञानी–अज्ञानी, धनी–निर्धन, राजा–रंक इत्यादि सभी दुखी हैं, केवल साधु अर्थात वैराग्य में जीवन–यापन करने वाला मनुष्य ही सुखी है। यहाँ पर सहजोबाई बौद्ध दर्शन से प्रभावित दिखाई देती हैं। जिस प्रकार बुद्ध ने कहा है– दुःख सत्य है और दुःख का कारण तृष्णा है। अगर मनुष्य तृष्णा को त्याग देता है तो उसके सभी दुःख समाप्त हो जाते हैं। सहजोबाई कहती है कि सुख न ही राजमहलों में है और ना ही राजपाट में है, सुख केवल तृष्णा के त्याग के उपरांत ही प्राप्त हो सकता है–

ना सुख दारा सुत महल, ना सुख भूप भये।
साधु सुखी सहजो कहै, तृष्णा रोग गये।।[33]

'सहजप्रकाश' में संकलित रचनाओं के माध्यम से स्पष्ट होता है कि सहजोबाई को वेद, पुराण, गीता, द्वैत, अद्वैत, सिद्ध–नाथ, जैन–बौद्ध और योगमार्ग इत्यादि के साथ–साथ ज्योतिष और संगीत का भी उचित ज्ञान था। सहजोबाई ने सोलह तिथि वर्णन और सात वार वर्णन के अंतर्गत हिन्दू पंचांग के अनुसार सोलह तिथियों के विषय में लिखा है–

प्रमाण करूं शुक देव जी, तुम पर वारूँ प्राण।
सोलह तिथि अब कहत हूँ, इनका दीजै ज्ञान।।[34]

सोलह तिथियों और सात वार वर्णन के लिए सहजोबाई ने कुंडलिया छन्द का प्रयोग किया है। सोलह तिथियों में हिन्दू पंचांग के अनुसार शुभ–अशुभ इत्यादि के विवरण दिए गये हैं। सात वार वर्णन में सात दिवसों को क्रम में बांध कर सहजोबाई ने सिद्ध किया है कि इन्हीं सात दिवसों में संसार का उद्भव और अंत होता है। 'सहजप्रकाश' के अंत में सहजोबाई के मिश्रित पद दिए गये हैं, जिनको संगीत के राग–रागनियों में लिखा गया है। ये विभिन्न प्रसंगों और अवसरों पर लिखे गये हैं। इनके वर्ण्य विषय भी यद्यपि गुरु भक्ति इत्यादि ही हैं किन्तु शैली और विन्यास के स्तर पर ये छिटपुट रचनाएँ सम्पूर्ण रचना से सर्वथा भिन्न हैं।

'सहजप्रकाश' के अंतर्गत तत्कालीन समाज का भी चित्रण किया गया है। सहजोबाई गुरु महिमा, वैराग्य उपजावन, साधु के गुण, जन्म मरण इत्यादि के माध्यम से सामाजिक संरचना का भी यथा स्थान उल्लेख करती है। सहजोबाई उत्तर–मध्यकाल में वर्तमान थी। उस समय समाज में जाति और वर्ण व्यवस्था व्याप्त थी। सत्संग के विषय में उल्लेख करते हुए सहजोबाई कहती हैं– ''जो आवे सत्संग में, जात वर्ण कुल खोय।''[35]निर्गुण संतों ने निरंतर समाज में व्याप्त ऊँच–नीच, भेद–भाव इत्यादि को समाप्त करने के लिए प्रयास किए हैं। सहजोबाई ने सत्संग के माध्यम से समाज में जात–पात की व्यवस्था को खत्म करने की पहल की है। वैराग्य और साधु के गुणों का उल्लेख करते हुए सहजोबाई कहती हैं, सच्चा साधु वह है जो मनुष्य में किसी प्रकार का भेदभाव न करता हो–''समुझि एकता भाव न दूजे। जिनके चरण सहजिया पूजे।''[36]समाज में प्रत्येक व्यक्ति और वर्ग के लिए सामान दृष्टि की बात करते हुए सहजोबाई ने कहा है, समाज में गरीब–अमीर का भेद नहीं होना चाहिए, साधु को चाहिए कि वह सभी को समान दृष्टि से देखे–''सम दृष्टि सहजो कहैं, समझे रंक न भूप।''[37]सहजोबाई ने कबीर, रैदास और दादू की भांति जाति, धर्म, वर्ण इत्यादि के भेदभाव को समाप्त कर समाज में समरसता स्थापित करने के लिए सबसे उपयुक्त मार्ग प्रेम का माना है। सहजोबाई कहती है–''प्रेम दीवाने जो भये, जातवर्ण गई छूटि।''[38]

सहजोबाई और उनकी गुरु बहन दयाबाई के सन्दर्भ में रमाशंकर शुक्ल 'रसाल' ने लिखा है–''सरल भाषा में दोहा जैसे छोटे–छोटे छंदों से सुंदर भक्ति–काव्य लिखने वाली स्त्रियों में दयाबाई और सहजोबाई का नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। भक्तिकाल में जिस प्रकार संतों ने जो कि भगवद्ग भक्त और सत्संगी आदमी थे तथा काव्य–शास्त्र से पूर्ण परिचित न थे, अपनी–अपनी वानियाँ, दोहा, साखी आदि छंदों में लिखी हैं, उसी प्रकार दयाबाई और सहजोबाई ने भी किया है।''[39]'सहजप्रकाश' की भाषा निर्गुण संतों की भाषा के अनुरूप ही मिश्रित भाषा है। जिसमें खड़ी बोली, राजस्थानी, बुन्देली और ब्रज का मिश्रित रूप में प्रयोग किया है। सरल, सर्वग्राह्य और

जनसाधारण की समझ के स्तर की भाषा का प्रयोग 'सहजप्रकाश' में हुआ है। सम्पूर्ण रचना में दोहा, चौपाई और कुंडलियाँ छंद का ही प्रयोग हुआ है। ये तीनों छंद कबीर के दोहे, रामचरित मानस की चौपाई और गिरधर कविराय तथा साईं की कुंडलियों के रूप में पूर्व काल से ही लोक में प्रचलित थे।

अध्ययन का उद्देश्य–

सहजोबाई का मध्य कालीन भक्ति साहित्य की परम्परा में विशेष रूप से उल्लेख मिलता है। उन्हें निर्गुण भक्तिकाव्य धारा के अंतर्गत स्थान दिया जाताहै। सहजोबाई कृत रचनाएँ 'सहजप्रकाश' शीर्षक से संग्रहित हैं। सहजोबाई कृत समस्त रचनाओं के संकलन के रूप में प्रस्तुत 'सहजप्रकाश' पुस्तक की समीक्षा सहजोबाई के कृतित्व और व्यक्तित्व के अवलोकन का आधार है। सहजोबाई की भक्ति, काव्य प्रवृत्ति, काव्य में गृहीत विषय, काव्य की भाषा एवं शैली इत्यादि पक्षों के विश्लेषण और अनुशीलन करने का प्रयास इस पत्र के अंतर्गत किया गया है।

निष्कर्ष:

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि सहजोबाई कृत 'सहजप्रकाश' के अंतर्गत गुरु महिमा के अतिरिक्त निर्गुण मत के अन्य सिद्धांतों का भी प्रतिपादन हुआ है। पूर्ववर्ती निर्गुण कवियों के काव्य के सापेक्ष 'सहजप्रकाश' में यह नवीनता है कि सहजोबाई अपनी बात को समाज में पहुँचाने के लिए केवल निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना ही नहीं करती है। जनसामान्य में ब्रह्म के सगुण रूप को अधिक स्वीकार किया जाता है। इस दृष्टि से समाज में अपना संदेश प्रेषित करने के लिए सहजोबाई ने निर्गुण के साथ–साथ सगुण ब्रह्म का भी उल्लेख किया है। विषय के स्तर से सहजोबाई की रचनाओं में कोई नवीनता नहीं दिखाई देती है, हालाँकि शैली में कुछ नये प्रयोग अवश्य हुए हैं। कबीर, दादू, नामदेव इत्यादि के पदों से मिलती–जुलती रचनाएँ कहीं अद्वैतवाद के अनुसार जगत को मिथ्या घोषित करते हैं, तो कहीं सूफीमत की भांति प्रेम का पुट संयोजित करते हैं। कहीं श्रीमदभागवत की भांति कर्म योग और साधु की वाणी पर विचार किया गया है तो कहीं पुराणों में वर्णित चौरासी लाख योनियों के चक्र का प्रतिपादन किया है। इनके पदों में योग, ज्ञान और भगवत भक्ति के प्रभाव को सीधे देखा जा सकता है। विनय, भक्ति और याचना इत्यादि के एक साथ आने से निर्गुण और सगुण को एक ही धरातल पर स्थापित किया गया है। 'सहजप्रकाश' में सहजोबाई की साधना ही प्रधान है। उन्होंने जीवन और प्रकृति के अनेक उपकरणों से उपमान ग्रहण कर, गुरु से सीखे हुए सिद्धांतों का प्रतिपादन किया है।

पाद टिप्पणी

1. *सहजोबाई, सहजप्रकाश, (सं.) पं. शिवनारायण शर्मा, श्रीवेंकेटेश्वर प्रेस, मुम्बई, सन 1922 ई., पृ.सं.–80*
2. *वही, पृ.सं.–80*
3. *वही, पृ.सं.–04*
4. *वही, पृ.सं.–03*
5. *डॉ. राजकिशोर पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का उत्तर–मध्य युग, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1971 ई., पृ.सं.–357*
6. *सहजोबाई, सहजप्रकाश, (सं.) पं. शिवनारायण शर्मा, श्रीवेंकेटेश्वर प्रेस, मुम्बई, सन 1922 ई., पृ.सं.–05*
7. *वही, पृ.सं.–08*
8. *रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 ई., पृ.सं.–39*
9. *सहजोबाई, सहजप्रकाश, (सं.) पं. शिवनारायण शर्मा, श्रीवेंकेटेश्वर प्रेस, मुम्बई, सन 1922 ई., पृ.सं.–10*
10. *गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस, बालकांड, 240/2*
11. *सहजोबाई, सहजप्रकाश, (सं.) पं. शिवनारायण शर्मा, श्रीवेंकेटेश्वर प्रेस, मुम्बई, सन 1922 ई., पृ.सं.–09*
12. *ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि– कौमुदी, गाँधी–हिन्दी–पुस्तक–भंडार, प्रयाग, 1931 ई., पृ.सं. 101*
13. *सहजोबाई, सहजप्रकाश, (सं.) पं. शिवनारायण शर्मा, श्रीवेंकेटेश्वर प्रेस, मुम्बई, सन 1922 ई., पृ.सं.–22*
14. *रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, अशोक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014 ई., पृ.सं.–39*
15. *दादू ग्रन्थावली, (सं.) डॉ. बलदेव वंशी, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली,*
16. *सहजोबाई, सहजप्रकाश, (सं.) पं. शिवनारायण शर्मा, श्रीवेंकेटेश्वर प्रेस, मुम्बई, सन 1922 ई., पृ.सं.–23*
17. *वही, पृ.सं.–27*
18. *वही, पृ.सं.–25*
19. *वही, पृ.सं.–25*
20. *ओशोगंगा ब्लॉक स्पॉट डाट कॉम*
21. *गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस, बालकांड, 22/1*
22. *गोस्वामी तुलसीदास, रामचरित मानस, बालकांड, 115/1*
23. *सहजोबाई, सहजप्रकाश, (सं.) पं. शिवनारायण शर्मा, श्रीवेंकेटेश्वर प्रेस, मुम्बई, सन 1922 ई., पृ.सं.–79*
24. *वही, पृ.सं.–78*
25. *डॉ. राजकिशोर पाण्डेय, हिन्दी साहित्य का उत्तर–मध्य युग, हिन्दी साहित्य भंडार, लखनऊ, 1971 ई., पृ.सं.–356*
26. *सहजोबाई, सहजप्रकाश, (सं.) पं. शिवनारायण शर्मा, श्रीवेंकेटेश्वर प्रेस, मुम्बई, सन 1922 ई., पृ.सं.–78*
27. *दादू दयाल, संतवाणी संग्रह भाग–1, पृ.सं. 87*
28. *सहजोबाई, सहजप्रकाश, (सं.) पं. शिवनारायण शर्मा, श्रीवेंकेटेश्वर प्रेस, मुम्बई, सन 1922 ई., पृ.सं.–29*
29. *वही, पृ.सं.–32*
30. *वही, पृ.सं.–37*
31. *वही, पृ.सं.–45*
32. *वही, पृ.सं.–34*
33. *वही, पृ.सं.–35*
34. *वही, पृ.सं.–75*
35. *वही, पृ.सं.–29*
36. *वही, पृ.सं.–33*
37. *वही, पृ.सं.–34*
38. *वही, पृ.सं.–72*
39. *ज्योति प्रसाद मिश्र 'निर्मल', स्त्री–कवि– कौमुदी, गाँधी–हिन्दी–पुस्तक–भंडार, प्रयाग, 1931 ई., पृ.सं. 22*